भाषा का अभिप्राय-

 मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः उसे सदा विचार-विनिमिय की आवश्यकता पड़ती है। इस कार्य को वह अनेक प्रकार से सम्पन्न करता है। जैसे - बोलकर, इशारों से या स्पर्श से। भाषा का इतना विशद रूप न लेकर केवल बोलने और लिखने को ही इसके अन्तर्गत लिया जाता है। इसका संबंध ध्वनि से है। स्पष्टतः ’विचार-विनिमय के माध्यम‘ को भाषा कहने में अतिव्याप्ति दोष है। इसका रूप और भी सीमित हो जाता है क्योंकि इसमें ध्वनि उत्पन्न करने वाले सभी साधनों को न लेकर मनुष्य द्वारा बोलने को ही लिया जाता है। ’भाषा‘ शब्द संस्कृत की ’भाष्‘ धातु से बना है जिसका अर्थ है बोलना या कहना अर्थात् ’भाषा‘ वह है जिसे बोला जाए।

 भाषा का संबंध ध्वनि से है। वास्तव में इसका रूप और भी सीमित हो जाता है क्योंकि इसमें ध्वनि उत्पन्न करने वाले सभी साधनों को न लेकर केवल मनुष्य के द्वारा बोलने को ही लिया जाता है। मनुष्यों में ही गूँगों का बोलना नहीं लिया जाता। भाषा को परिभाषाबद्ध करने का अनादि काल से ही प्रयत्न होता चला आया है। पाश्चात्य विचारक प्लेटो ने ’सोफिस्ट‘ में विचार और भाषा का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, ’’विचार आत्मा की मूक या अध्वन्यात्मक बातचीत है, किन्तु जब वही ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।‘‘ वान्द्रिय महोदय भाषा के विषय में कहते हैं कि -’’भाषा एक तरह चिह्न है। चिह्न से आशय उन प्रतीकों से है जिनकी सहायता से मानव अपना विचार दूसरों पर प्रदर्शित करता है। ये प्रतीक कई प्रकार के होते हैं, जैसे - नेत्रग्राह्य, श्रोत्र-ग्राह्य या स्पर्श ग्राह्य। वास्तव में श्रेात-ग्राह्य प्रतीक भाषा की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है।‘‘

 आधुनिक काल में देश-विदेश के अनेक विद्वानों के भाषा-संबंधी विचारों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वे लगभग एक बात ही कहना चाहते हैं, किन्तु फिर भी मुख्य मत इस प्रकार प्रकट किए जाते हैं -

 "A Language is a system of arbitary vocal symbols by means of which members of a social group co-operate and inter-act."

 एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका - "Language may be defined as arbitrary system of vacal symbols by means of which human beings, as members of a social group and participants in cultural inter-act and communicate."

 सामान्य रूप से भाषा उसे माना जाता है, जिसके माध्यम से हम अपने विचार या भाव दूसरों तक पहुँचा सकें। किन्तु इसमें अतिव्याप्ति दोष है। भाषा के संबंध में एक भारतीय विचारक ने भी कहा है कि भाषा एक विकसनशील, विश्लेषण-सापेक्ष, यादृच्छिक एवं ध्वनिमूलक सार्थक व्यवस्था है।

 मोरियो एपाई तथा फ्रेंक ग्यानोर - ’’भाषा उन सार्थक और विश्लेषण समर्थ मानवोच्चारित ध्वनियों को कहते हैं जिनका प्रयोग मानव विचारों और भावों को व्यक्त करने के लिए करता है।‘‘

 ए०ए०कार्डीनर के शब्दों में, ’’विचाराभिव्यक्ति के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेत ही भाषा है।‘‘

 कामता प्रसाद गुरु का मानना है कि ’’भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली प्रकार प्रकट कर सकता है। दूसरों के विचार स्पष्टतः अपने आप समझ सकता है।‘‘

 डाॅ. श्यामसुन्दर दास कहते हैं कि ’’मनुष्य-मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का व्यवहार भाषा है।‘‘

 डाॅ. बाबूराम सक्सेना के मत है कि ’’जिन ध्वनि चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार विनिमय करता है उसको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं।

 भाषा के विषय में पतंजलि का मत है कि ’’जो वाणी वर्णों में व्यक्त होती है, उसे भाषा कहते हैं। इसमें स्पष्टता व सार्थकता की भावना विद्यमान है।‘‘

 वास्तव में भाषा की इन परिभाषाओं को देखने पर भाषा की कुछ विशेषताएँ हमारे सामने आती हैं -

1. भाषा विचार-विनिमय का साधन है।

2. भाषा उच्चारण अवयवों से निःसृत ध्वनि समष्टि होती है।

3. भाषा में प्रयुक्त ध्वनि समष्टियाँ सार्थक तो होती हैं किन्तु उनका भावों या विचारों से संबंध केवल ’यादृच्छिक‘ (arbitrary) या ’माना हुआ‘ होता है।

4. भाषा में एक व्यवस्था (system) होती है।

5. एक भाषा का प्रयोग एक विशेष समाज या वर्ग में होता है। उसी में वह बोली और समझी जाती है।

 इन्हीं विशेषताओं के आधार पर भाषा की सटीक वैज्ञानिक परिभाषा भोलानाथ तिवारी ने दी है। उनके मतानुसार ’’भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा किसी भाषा-समाज के लोग आपस में विचार-विनिमय करते हैं।‘‘

 भोलानाथ तिवारी की उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार भाषा की पारिभाषिक विशेषताएँ निम्नलिखित प्रकार से हैं -

 (1) भाषा ध्वनिमूलक होती है - अर्थात् भाषा में अभिव्यक्ति का आधार ध्वनियाँ होती हैं। बोलने वाला अपने विचारों या भावों को व्यक्त करने के लिए ध्वनियों का ही प्रयोग करता है तथा श्रोता ध्वनियों के माध्यम से ही विचारों को समझ लेता है। यों विचार-विनिमय आँखों के संकेत या स्पर्श आदि अन्य साधनों के द्वारा भी हो सकता है, किन्तु वे भाषा के अन्तर्गत नहीं आते।

 (2) भाषा में प्रयुक्त ध्वनियाँ उच्चारण-अवयवों से उच्चरित होती हैं - उच्चारण अवयव का अर्थ है ओष्ठ, जीभ, दाँत, तालु आदि वे अंग जिनके द्वारा भाषा-बोलने में उच्चारण किया जाता है। यों तो ध्वनि ताली बजाकर, घण्टी बजाकर या अनेक अन्य प्रकारों से भी उत्पन्न की जा सकती है, किन्तु भाषा के प्रसंग में जिन ध्वनियों का उल्लेख किया जाता है, वे केवल उच्चारण अवयवों से ही उच्चरित होती हैं।

 (3) भाषा एक व्यवस्था है - व्यवस्था के कारण ही बोलने वाला जो कुछ कहना चाहता है, सुनने वाला भाषा के माध्यम से वही ग्रहण करता है। यदि व्यवस्था न होती तो वक्ता कहता कुछ और तथा श्रोता समझता कुछ और। उदाहरण के लिए हिन्दी भाषी व्यक्ति ’राजा-रानी‘, खाना खा लिया, खाना खाएगा, तानसेन गाता है, लड़के गाते हैं‘ सनुकर व्यवस्था के कारण ही समझ जाता है कि पहला पुल्लिंग है तो दूसरा स्त्रीलिंग, तीसरा भूतकाल है तो चैथा भविष्य तथा पांचवाँ एकवचन है तो छठा बहुवचन। व्याकरण में भाषा की इसी व्यवस्था का विश्लेषण होता है। यह व्यवस्था ध्वनि, रूप, शब्द, वाक्य-रचना आदि सभी स्तरों पर होती है। यों भाषाओं में कुछ अव्यवस्थाएँ भी होती हैं किन्तु व्यवस्था की तुलना में उनका अनुपात बहुत कम होता है।

 (4) भाषा प्रतीकात्मक होती है - भाषा में प्रयुक्त लगभग सारे शब्द (कुछ ध्वन्यात्मक शब्दों को छोड़कर) मूलतः प्रतीत होते हैं। आशय यह है कि ध्वनि और अर्थ का कोई सहज संबंध भाषा में नहीं होता है। ’पुस्तक‘ को पुस्तक इसलिए नहीं कहते कि ’प्+उ+स्+त्+अ+क्+अ‘ ध्वनियों से ’पुस्तक‘ वस्तु का कोई सहज या स्वाभाविक संबंध है। इसे कहने का कारण केवल यह है कि जिस भाषा का हम प्रयोग कर रहे हैं उसमें ये शब्द संबंधित वस्तुओं के प्रतीक मान लिए गए हैं। इसी तरह सभी भाषाओं के लगभग सभी शब्द (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय) मूलतः प्रतीक (symbol) होते हैं।

 (5) प्रतीक यादृच्छिक होते हैं - यादृच्छिक (Arbotrary) का अर्थ है ’जैसी इच्छा हो‘। इसका तात्पर्य है कि विभिन्न वस्तुओं या विभिन्न क्रियाओं के प्रतीक ये शब्द वस्तु या क्रिया आदि के किसी आंतरिक गुण को सोचकर नहीं बनाए गए हैं, या यों भी कह सकते हैं कि सतर्क होकर इनका निर्माण नहीं किया गया है। ये शब्द यों ही बन गए और विभिन्न वस्तुओं या क्रियाओं के प्रतीक रूप में इनका निर्धारण हो गया। इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि विश्व की विभिन्न भाषाओं में एक ही वस्तु या क्रिया के लिए अलग-अलग शब्द मिलते हैं। यदि यह यादृच्छिकता न होती तो एक वस्तु का सभी भाषाओं में प्रायः एक ही नाम होता।

 हमें यह बात ध्यान रखने की है कि जब प्रारंभ में भाषा बनी होगी तो भाषा में प्रयुक्त प्रतीकों के यादृच्छिक होने की संभावना रही होगी परन्तु आज जैसे-जैसे मनुष्य में बुद्धि का विकास हो रहा है वैसे-वैसे सतर्क होकर शब्द-निर्माण किए जाने लगे हैं। जैसे - ’घुसपैठिया‘ (घुस-पैठ करने वाला), तापमापी (थर्मामीटर) आदि। मेरे अपने विचार से आज जब कोई भी नया आविष्कार होता है तो वस्तुओं के नाम सतर्क होकर बौद्धिक समाज ही करता है।

 (6) भाषा किसी विशेष या सीमित भाषिक समाज की होती है - हर भाषा का प्रयोग एक सीमित समाज में ही होता है। वह भाषा उसी विशेष या सीमित समाज में बोली तथा समझी जाती है। उस समाज के बाहर भाषा का कोई अर्थ नहीं है। जैसे - हिन्दी भाषा का महत्त्व केवल भारत में ही है, जापान में हिन्दी भाषा का कोई महत्व नहीं है क्योंकि हिन्दी भाषा से जापान में विचार-विमर्श संभव नहीं है।

 (7) भाषा विचार-विनिमय का साधन होती है - हर भाषा अपने समाज विशेष में विचार-विनिमय का साधन होती है। इस प्रसंग में यह बात ध्यान देने की है कि यों तो सोचने में भी एक प्रकार की अध्वन्यात्मक या सूक्ष्म भाषा का प्रयोग होता है जिसका प्रायः समाज से कोई संबंध नहीं होता और जो वैयक्तिक होती है किन्तु भाषा विज्ञान में जिस भाषा का हम अध्ययन-विश्लेषण करते हैं, वह चिन्तन की वह सूक्ष्म अध्वन्यात्मक भाषा से भिन्न है। अतः समाज में विचार-विनिमय में प्रयुक्त भाषा ध्वन्यात्मक भाषा ही है।